REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

राष्ट्र कवि दिनकर के निबंधों में गांधीवाद

हेमलता प्रजापति[1] , डॉ. रेखा दुबे[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी विभाग डॉ. सी.वी. रमन युनिवर्सिटी, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
[2]शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉ. सी.वी. रमन युनिवर्सिटी कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :

गांधीजी की सबसे बड़ी देन है सत्याग्रह और अहिंसा। गांधीजी ने किसी नए दर्शन का प्रवर्तन नहीं किया बल्कि जिस विचार धारा पर उनका विश्वास था, उसे उन्हों ने कार्यरूप में परिणत करदिया और वही उनका दर्शन बन गया। वे ज्ञान से ज्यादा कर्म को महत्व देते थे। उनका मानना था कि छटांक भर कर्म सौ मन ज्ञान से श्रेष्ठ है। गांधी जी का चरखा वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रतिक है। जिससे सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो सके, जिससे आर्थिक समानता लाया जा सके।

हिन्दी साहित्य में कुछ कवि ऐसे हैं जिन्हें शुद्ध गांधीवादी कवि कहा जा सकता है जैसे – भवानी प्रसाद जी, सियाराम शरण गुप्तजी गद्य में जैनेन्द्रजी, जो हर परिस्थिति में गांधीवाद को सही मानते हैं किन्तु दिनकर उन कवियों में से हैं जो स्वयं को खराब गांधीवादी मानते हैं। किन्तु जहाँ तक भारतीयों की एकता और सामंजस्य की बात है तो यहाँ दिनकर, गांधीजी को इतिहास के तीन बड़े नेताओं में से एक मानते हैं – ''हिन्दुस्तान के इतिहास में हिन्दू–मुस्लिम एकता के बड़े नेता तीन हुए हैं। उनमें से पहले का नाम महात्मा कबीरदास, दूसरे को सम्राट अकबर और तीसरे का नाम महात्मा गांधी था।''

दिनकरजी ने अपनी कविताओं में गांधीजी कि स्तुति भी की है और गांधीजी के अहिंसावाद की रक्षा करने के लिए खड़ग उठाने का आह्वाहन भी किया है। जिस प्रकार ऋषियों के तप और यज्ञ को सफल बनाने के लिए राम को अपना धनुष बाण लेकर खड़ा होना पड़ा उसी प्रकार भारत को भी सीमा पर शान्ति स्थापना के लिए अस्त्र और शस्त्र उठाते समय हिंसा–अहिंसा का विचार त्याग देना चाहिए। उनके अनुसार–

''यह नहीं शान्ति की गुफा, युद्ध है, रण है,
तप नहीं, आज केवल तलवार शरण हैं।
ललकार रहा भारत को स्वयं मरण है
हम जीतेंगे यह समर, हमारा प्रण है।''[2]

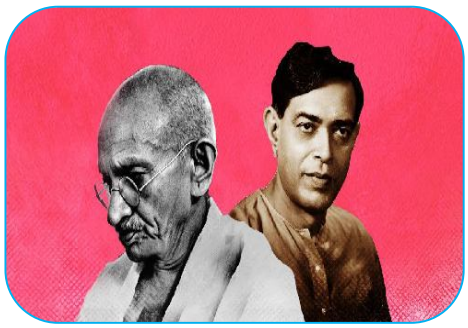

दिनकरजी इस बात से क्षुब्ध थे कि गांधी जी की महिमा, उनके महत्व को अपने देश के लोग ही भूल गए हैं। कुछ नए ढंग के लोग हैं जो गांधी पर प्रहार करते हैं, और आज भी धर्म और जाति के नाम पर लोगों के बीच जहर घोलते हैं। दिनकर कहते हैं– ''समग्र इतिहास में यह मनुष्य जाति का पहला आंदोलन था, जिसने यह प्रमाणित किया कि युद्ध तलवार के बिना भी लड़ा जा सकता है और स्वतंत्रता रक्त बहाए बिना भी प्राप्त की जा सकती है। भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम के चलते केवल भारत ही स्वाधीन

नहीं हुआ, बल्कि उसके प्रभाव से एशिया और अफ्रीका के बहुत से देश स्वाधीन हुए। और उस संग्राम की प्रेरणा भारत से बाहर आज भी अपना काम कर रही है। दुःख की बात है कि विदेशों के मनीषी तो जब–तब इस आन्दोलन पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, किन्तु अपने देश के लोग उसकी महिमा को भूल गए।''[3] दिनकर की रचनाओं को क्रमवार पढ़ने से यह पता चलता है कि वे सन् 1930 के आस–पास जब गांधीजी नमक–सत्याग्रह के द्वारा भारतीयों को अपना अधिकार दिनवाने के लिए सविनय अवज्ञा के माध्यम से जन संघर्ष को व्यापकता प्रदान कर रहे थे, दिनकर उनसे इतने प्रभावित हो गये थ कि उन्होंने अपनी कविता 'महात्मागाधी' में उन्होंने गांधीको 'ईसा' के समान विश्व–प्रेम का गायन कर्ता 'प्रह्लाद' के समान जुल्मी के जुल्म को देखकर भी हँसते हुए आग में जलने वाला और 'दधीचि' के समान अपने प्राणों की बाजी लगाकर जग में फैले अंधियारे में उजाला फैलाने वाला कहा है।

'हँसता 'प्रह्लाद' अनल में
जुल्मी की लख नाराजी।
कोई 'दधीचि' धरता है
अपने प्राणें की बाजी।'[4]

जब गांधीजी ने कहा 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' तब दिनकर ने उन्हें पृथ्वी पर हिमालय और आकाश में सूर्य कहा। उन्होंने गांधी को ईसा, बुद्ध और महावीर का सखा कहा। उन्होंने गांधी को पृथ्वी पर कर्मठ कवि कहा जिसका चरित्र कोटि कविताओं के निर्झर के समान है। जिसके सत्याग्रह रूपी पारस के स्पर्श से तलवारें भी लौह गुण को छोड़ कर स्वर्ण बन जाती है।

लेकिन स्वतंत्रता के बाद गांधीजी के बाद लोगों ने उनके शक्ति का जो दुर्पयोग किया उससे दिनकर बहुत दुःखी थे। वे कहते हैं– देश का धनी–वर्ग गांधीजी का नाम जरूर लेता रहा, लेकिन इसलिए नहीं कि गांधी–मार्ग पर उसे चलना था, बल्कि इस लिए कि साम्य वाद के प्रहार से बचने के लिए गांधी के नाम का उसके लिए बड़ा भारी उपयोग था। असल में गांधीजी को देश के धनियों ने अपना रखवाला नियुक्त कर लिया और दरवाजे पर उन्हें खड़ा करके निश्चिन्त हो गए।'[5]

गांधीजी अहिंसा के पुजारी थे उनके व्यक्तित्व पर जैन संस्कार का प्रभाव था 'अनेकान्तवाद' जैन धर्म के सबसे महत्वर्पूण और मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है जिसके अनुसार भिन्न–भिन्न कोणों से देखने पर सत्य और वास्तविकता भी अलग–अलग समझ आती है। अतः एक ही दृष्टिकोण से देखने पर पूर्ण सत्य नहीं जाना जा सकता। हिंसा केवल शारीरिक नहीं मानसिक अथवा बौद्धिक भी होती है। गांधीजी ने मानसिक अहिंसा को भी पूरी तरह से आत्मसात कर लिया था। दिनकर कहते हैं– 'भारत ने अहिंसा का साधना करते–करते जिस सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त का पता लगाया वह अनेकान्तवाद या स्याद्वाद का सिद्धान्त है और भारत के सबसे बड़े अनेकान्तवादी सन्त महात्मा गांधी हुए हैं जो समझौते के सबसे बड़े प्रेमी थे।'[6] दिनकर अहिंसा की महिमा को मानते हैं, किन्तु वे यह भी मानते हैं कि वर्तमान भारत के लोगों ने अहिंसा को गलत ढंग से समझा है। जहाँ लोगों को प्रेम पूर्ण व्यवहार करना चाहिए वहाँ तो वे लड़ रहे हैं और जहाँ युद्ध करना चाहिए वहाँ उन्हें अहिंसा याद आता है। उनके शब्दों में– 'आज यूनिवर्सिटियों में वाइसचांसलर को पीटा जाता है, प्रिसीपल को पीटा जाता है, प्रोफेसर को पीटा जाता है, भाई–भाई आपस में लड़ते है और सभा में बहस करते हुए आँखे लाल करके लोग एक–दूसरे से भिड़ जाते हैं। मगर जब युद्ध उठता है तब ग्रन्थ खोलते हैं कि लड़ना चाहिए कि नहीं। इसको मैं अहिंसा का गलत प्रयोग समझता हूँ।'[7] दिनकरजी के विचारों में गीता, वाल्मीकि, रामायण, तुलसीकृत रामायण और गुरू गोविन्द सिंह का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन ! अगर युद्ध में तू मारा गया, तो तुझे स्वर्ग प्राप्त होगा; यदि युद्ध में तू जीत गया, तो पृथ्वी पर तू राज करेगा। अतएव तुझे युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए। तुलसीदास जी मानस में कहते हैं :

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले रामसकोपतब, भय बिनु होइ न प्रीति।
लछुमन वेगि सरासन आनू, सोखौंवारिधि बिसिख कृसानू।

दिनकर ने अपने इतिहास और संस्कृति परक् अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी धर्म या दर्शन के अतिवादी होने से वह नुकसान देह होने लगता है। जैसे बुद्ध और महावीर के उपदेश एक ओर तो सामाजिक समरसता में सहायक सिद्ध हुए वहीं बाद में इससे निवृत्ति की भावना इतनी बढ़ गई कि जो आर्य पहले धर्म साधना भी गृहस्थ जीवन के साथ–साथ करते थे वे युवावस्था मेंही सन्यास लेने लगे। इस प्रकार लोग अपने कर्म क्षेत्र से मुँह मोड़ने लगे। दिनकर की नजर में जब चीन ने हमारे देश पर आक्रमण किया उस समय अहिंसा के बारे में सोंचना ऐसा ही अतिवाद था। उनके शब्दोंमें– 'हमारे यहाँ जबचीन ने अक्रमण किया, उस समय वर्धा में सन्त लोग जुटे ग्रन्थ खोजने में कि हमारा धर्म क्या है ? धर्म तुम्हारा सिर है। जब मारने को कोई उठेगा, उस समय आप धर्म खोजेंगे! मैं कहता हूँ, हमारा आपसी व्यवहार अहिंसा पूर्ण होना चाहिए, संघीय चुनाव में अहिंसा होनी चाहिए। लेकिन युद्ध में तो हिंसा होगी ही। युद्ध के समय मेंही हमें अहिंसा और गांधी याद आते हैं।गांधी कायर नहीं थे।उनकी अहिंसा कायर नहीं थी। गांधीजी अभय का मंत्र देते थे। मैं यही चाहता हूँ कि सारा देश अहिंसा के मार्ग पर चले! अभय के मार्ग पर चले! महावीर के मार्ग पर चले![8] दिनकर जी आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार लाने हेतु, गांधीजी की प्रासंगिता स्वीकार करते हैं। गांधीजी के सिर्फ विचार ही नहीं उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व जो सादा जीवन उच्च विचार की मिशाल है, वह समाज में श्रम और सादगी को प्रतिष्ठित करती है। लेकिन हमारी शिक्षा–पद्धति ऐसा है, जो युवाओं को शारीरिक श्रम वाले कामों से दूर करती है और कलम और कुदाल की दूरी को और बढ़ा देती है। ऐसे में दिनकर, गांधी को याद करते हैं– 'गरीबी हटाओ' का नारा सुनाने में चाहे जितना भी अच्छा लगे, लेकिन अमीरी को घटाए बिना गरीबी नहीं घटेगी। गांधीजी अप्रासंगिक नहीं हुए हैं। वे आज भी रेलवेंट हैं। मितव्ययिता, सादगी और कठोर अध्यवसाय के बिना इस देश से गरीबी दूर नहीं होगी।'[9]

दिनकर गांधी युगीन भारत को मूल्यों की दृष्टि से उन्नति के शिखर पर मानते है; क्यों कि तब देश भले ही पराधीन था, पर हमारे देश में साहित्य में रवीन्द्रनाथ, विज्ञान में जगदीश बोस और सी.वी.रमण उत्पन्न हुए, तथा देश के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले बूढ़ों और नौजवानों की विशाल संख्या भी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद लोभ और अनुशासन हीनता में जिस प्रकार की वृद्धि हुई वह चिंता जनक है। दिनकर कहते हैं– 'गांधीजी के बाद से हमारे राष्ट्रीय चरित्र में जो गिरावट शुरू हुई, वह अब इस हद तक पहुँच गई है कि उससे दुर्गंध आने लगी है। और यह दुर्गंध कहाँ–कहाँ से नहीं आ रही है; अंगुलि–निर्देश करना व्यथ है नाम लेना फिजूल है।'[10] दिनकरजी ने गांधी के सिद्धांतो और जवाहरलाल के सिद्धान्तों का असर, भारतीय समाज पर किस प्रकार पड़ा इसका तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। गांधीजी विज्ञान के समर्थक नहीं थे ; किन्तु वे इसके विरोधी भी नहीं थे, बस वे इतना कहते थेकि विज्ञान का प्रयोग कर आप कहाँ पहुँचना चाहते हैं और क्यों पहुचना चाहते हैं ये पता होना चाहिए। दिनकर के शब्दों में–

कौन कहता है कि बापू शत्रु थे विज्ञान के?
वे मनुज से मात्र इतनी बात कहते थे–
रेल, मीटर याकि पुष्पक यान, चाहे जोर चोपर
सोंचलो आखिर तुम्हें जीना कहाँ हैं ?

भारत यही भूलगया कि उसे जाना किस दिशा की ओर है। गाँधीजी के समय भारत यह जानता था कि स्वतंत्रता के बाद उसे किधर को जाना होगा। किन्तु जवार–युग में आकर वह अपनी निर्दिष्ट दिशा का भूल गया। गांधी–युग में इल्लत उस आदमी की होती थी, जिसकी आवश्यकताएँ थोड़ी, किन्तु चरित्र पवित्र था, जो अपने वैयक्तिक सुख को तुच्छ समझता था और देश हित को बड़ा; जो गरीब होने पर भी मेहनती, ईमानदार और शीलवान था। जवाहर लाल के युग में भी चरित्रवान निर्धन मनुष्य की थोड़ी इल्लत बनी रही, लेकिन जब से अधिकार, प्रतिष्ठा उसे मिलने लगी, जो चरित्रवान कम, चालाक ज्यादा था, जो गांव में कम, शहर में अधिक पूजा जाता था।'[11] जवाहर लाल जी के समय में देश में अमेरिका की तरह बनने की होड़ थी इसे दिनकर जी ने महारोग कहा है जिससे दुनिया के और देश भी पीड़ित थे। दिनकर ने अमेरिकी पद्धति को एक रोग की तरह त्याज्य कहा है; न सिर्फ भारत के लिए बल्कि स्वयं अमेरिका के लिए भी वह त्याज्य इस लिए है; क्योंकि– 'सारा संसार अभाव और दरिद्रता का एक महासमुद्र है, जिसमें जहाँ–तहाँ अति–समृद्धि के टापू दिखाई देते हैं।

एक टापू अमेरिका है, एक टापू पश्चिमी यूरोप है, एक टापू कनाडा है, एक टापू जापान है, एक टापू आस्ट्रेलिया है, एक टापू दक्षिणी अफ्रीका है। इन टापुओं की नकल करने में अगर भारत वर्ष लगा, तो कामयाबी तो उसेमिलने वाली नहीं है, हाँ उसके पास अब भी गर्व की जो वस्तु है, उसे वह खो बैठेगा।'[12] इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी इस बात पर जोर देते थे कि व्यक्ति अच्छा और ईमानदार बने, जबकि पंडित नेहरू उन्हें सुखी और सम्पन्न बनने पर जोर देते थे। इस लिए नेहरू जी के समय में सम्पन्न बनने की होड़ में बहुतों ने अपने भीतर की अच्छाई और ईमानदारी को निकाल कर फेंक दिया। दिनकर अपने आप से और हमसे यह प्रश्न करते हैं कि गलती कहाँ हुई है और सुधार का उपाय क्या है? और इस प्रश्न का एक संक्षेप जवाब कुछ इस तरह देते हैं– 'गलती यह हुई कि गांधीको हमने छोड़ दिया और सुधार का एक मात्र मार्ग यह है कि हम गाँधी को वापस लाएँ। जो गाँधी कौपीन पहनता था, जो गांधी मांस–मछली नहीं खाता था, जो गांधी हवाई–जहाज पर नहीं चढ़ा था,जो गांधी यती और सन्यासी था, ठीक उसी गांधी को वापस लाने की बात मैं नहीं करता। मै तो उस गांधी को वापस लाना चाहता हूँ, जो गरीबों का सच्चा हितैषी था, जो लोगों को सत्य और अहिंसा सिखाता था, जो गर्मियों में भी वर्धा जैसे ग्राम में एयरकंडीशन की कौन कहे, पंखे के बिना रहता था और सेठों के घर में रहकर भी बकरी का दूध और साग–सब्जी खाकर जीता था।[13]

गांधीजी ने अपनेकर्मों से मनुष्य जाति को एक और अद्‌भुत चीज दी थी; जिसके विषय में अन्य रचना कारों ने कम बात की है, वह सबसे बड़ी देन है अभय। जिस व्यक्ति को अपने सुखों की चिंता न हो, अपना आरामप्रिय न हो,जो कहता हो 'अराम हराम है' उसे भला किस चीज का भय होगा। सन् 1949 ई. जब गांधीजी की मृत्यु का शोक बिलकुल ताजा था दिनकरजी ने, अभय कोही गांधीमार्ग का सारमानकर, चारण–शैली में एक कविता लिखी थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है–

''मोह तिमिर है, मोह मृगु है, छोड़ो इसे अभागो रे!
भय का बन्ध न तोड़ अमृत के पुत्र मानवो, जागोरे!
दमन करो मत कभी, सत्य को खुलकर बाहर आन`दो,
भय के भीषण अंधकार में ज्योति उसे फैलाने दो।
जुल्मी को जुल्मी कहने में जीभ जहाँ पर डरती है,
पौरूष होता क्षार वहाँ दम घोट जवानी मरती है।
सत्य न होता प्राप्त कभी भी सत्य–सत्य चिल्लाने से,
मिलता है वह सदा एक निर्भयता को अपनाने से।''

जब भारत का उच्च शिक्षित वर्ग अंग्रेजो का अनुसरण करते हुए पतलुन और टाई पहनना अपनी तरक्की समझता था उस समय गांधीजी ने किसानों की धोती पहनली वह अवश्य ही निर्भयता का काम था। चम्पारण्य में गरीब किसानो के बीच बैठ कर उनकी आपबीती सुनकर उसे कागज पर लिखना उनके भीतर के डर को निकालने की तैयारी थी। असहयोग आन्दोलन से पूर्व जब उन्होंने अंग्रेजी सरकार की शैतानियत से भरी कहकर उसे या तो सुधारने या खत्मकरने की बात कही तब वे सारे देश से भय का भूत भगाना चाह रहे थे। लेकिन इसके विपरित कुछ लोग उन्हें उन संतो की पंक्ति में गिनने लगते हैं जो संसार त्याग की शिक्षा देते थे, जो संघर्षों से पलायन सिखाते थे, जो उस जगह से ही भाग खड़े होते थे जहाँ अत्याचार हो रहा हो।

गांधीजी संत होते हुए भी अन्य संतो से अलग थे; क्योंकि ज्यादातर संतों ने राजनीति को लाइलाज मानलिया था लेकिन गांधीजी ने राजनीति को हीअपना कार्य क्षेत्र चुना। दिनकर कहते हैं– 'गांधीजी संसार के पहले संत हैं, जिन्होंने अपने प्रयोग की सारी बुनियाद राजनीति पर रखी। मनुष्य का इलाज उन्होंने वहीं से शुरू किया, जहाँ कोढ़ का प्रकोप सबसे अधिक है। यदि राजनीति सुधर गई तो सारा मानव–समाज सुधर जाएगा।'[15]

अतः दिनकर के अनुसार गांधीजी की देन में निर्भयता का स्थान अहिंसा से कहीं ऊपर जाता है। गांधी–मार्ग की पहचान केवल अहिंसा नहीं, धर्म सम्मत वीरता है, पलायन नहीं जीवन संघर्ष है।

संदर्भ

1. मिली–जुली संस्कृति (मेरी यात्राएँ)/दिनकर रचनावली भाषा–8। सं. नंदकिशोर नवल, तरूण कुमार/लोक भारती प्रकाशन–प्रथम संस्करण/पृ.–100
2. परशुराम की प्रतीक्षा, (1963)/दिनकर रचनावली–1/सं– सं. नंदकिशोर नवल, तरूण कुमार/लोकभारती प्रकाशन /पृ.–361
3. गांधी को असली धोखा गांधी के शिष्यों ने दिया (शेष–निःशेष) दिनकर रचनावली–8/पृ.–48
4. महात्मा गांधी (प्रण–भंग तथा अन्य कविताएँ,1930)/दिनकर रचनावली 1/पृ.–58
5. गांधी को असली धोखा गांधी के शिष्यों ने दिया (शेष–निःशेष) दिनकर रचनावली–8/पृ.–52
6. शान्ति की समस्या (वेणुवन)/दिनकर रचनावली–8/पृ.–109
7. अहिंसा को इस देश के लोगों ने गलत समझा है (शेष–निःशेष) दिनकर रचनावली–8/पृ.–56
8. अहिंसा को इस देश के लोगों ने गलत समझा है (शेष–निःशेष) दिनकर रचनावली–8/पृ.–58
9. हमारी शिक्षा–पद्धति का सबसे बड़ा दोश (शेष–निःशेष) दिनकर रचनावली–8/पृ.–62
10. मूल्य–ह्रास के पच्चीस वर्ष (विवाह की मुसीबतें)/दिनकर रचनावजी–8/पृ.–177–178
11. मूल्य–ह्रास के पच्चीस वर्ष (विवाह की मुसीबतें)/दिनकर रचनावजी–8/पृ.–181–182
12. मूल्य–ह्रास के पच्चीस वर्ष (विवाह की मुसीबतें)/दिनकर रचनावजी–8/पृ.–182
13. मूल्य–ह्रास के पच्चीस वर्ष (विवाह की मुसीबतें)/दिनकर रचनावजी–8/पृ.–181
14. वीरता की परम्परा और गांधी–मार्ग (वट–पीपल)/दिनकर रचनावली–8/पृ.–270
15. वीरता की परम्परा और गांधी मार्ग (वट–पीपल)/दिनकर रचनावली–8/पृ.–271